SPECIAL ISSUE
January 2020

VIDYAWARTA®

Peer Reviewed International Refereed Research Journal

स्वयं वित्त पोषित,
एक दिवसिय राष्ट्रीय संगोष्ठी तिथि ४ जनवरी २०२०

हिंदी साहित्य में कृषक चेतना

संयोजक
हिंदी विभाग

श्री गजानन शिक्षण प्रसारक मंडल, येलदरी कैम्प द्वारा संचलित, (भाषिक मारवाडी अल्पसंख्यांक संस्था)

तोष्णीवाल कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय,

सेनगाव, ता.सेनगांव, जि.हिंगोली

■ संलग्न ■

स्वामी रामानंद तीर्थ मराठवाडा विश्वविद्यालय, नांदेड

प्रा.एस.जी.तळणीकर
प्र.प्रधानाचार्य

प्रा.प्रमोद घन
संगोष्ठी सचिव

डॉ.शंकर पजई
संगोष्ठी संयोजक

डॉ.विजय वाघ
संगोष्ठी सह संयोजक

26) समकालीन हिन्दी कविता में अभिव्यक्त कृषक चेतना ||104
डॉ. संतोष विजय येरावार, देगलूर

27) किसानी समाज हासिए पर 'हलफनामे' के जरिए ||108
डॉ. गोविंद गुंडप्पा शिवशेट्टे, जि. लातूर

28) त्रिलोचन के काव्य में किसान चेतना की अभिव्यक्ति ||110
डॉ. शेखर घुंगरवार, नांदेड

29) रामधारी सिंह दिनकर के काव्य में चित्रित किसान जीवन ||113
प्रा. लुटे मारोती भारतराव, नांदेड

30) समकालीन कविता में व्यक्त कृषक जीवन की त्रासदी ||117
प्रा. सूर्यकांत रामचंद्र चव्हाण, लातूर

31) आधुनिक उपन्यासों में चित्रित किसान की दशा और दिशा ||121
डॉ. शे. रज़िया शहेनाज शे. अब्दुल्ला, बसमतनगर

32) हिंदी उपन्यासों में कृषक चेतना ||124
प्रा.डॉ. हाके एम. आर., जि. परभणी

33) प्रेमचंद : कृषक जीवन कल और आज ||126
डॉ. हणमंत पवार, किल्लारी

34) डॉ. नीरजा माधव के "देनपा तिब्बत की डायरी" उपन्यास में व्यक्त कृषक चेतना ... ||132
प्रा. सोनकाम्बले पद्मानंद पिराजीराव, नांदेड

35) हिंदी की कविता में चित्रित कृषक जीवन ||135
डॉ. अविनाश कासांडे, जि. बीड

36) भारतीय किसान जिवन की त्रासदी (हिंदी उपन्यासों के परिप्रेक्ष में) ||137
प्रा. भेंडेकर एन. एस., गंगाखेड

37) पूस की रात कहानी के बहाने किसान विमर्श ||141
डॉ बालाजी श्रीपती भुरे, जि. लातूर

38) हिंदी काव्य और कृषक जीवन : एक अनुशीलन ||144
प्रा. डॉ. संतोष सुभाषराव कुलकर्णी, लातूर

www.vidyawarta.com/03 — http://www.printingarea.blogspot.com

27

किसानी समाज हासिए पर 'हलफनामे' के जरिए

डॉ. गोविंद गुंडप्पा शिवशेट्टे
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
महाराष्ट्र महाविद्यालय निलंगा, जि. लातूर

कथा सम्राट प्रेमचंद ने सन १९३६ 'गोदान'में किसान की बात कही थी। बडी विदारक स्थिति का परिचय हुआ किसान की । इस रचना के बाद किसान न केवल सामाजिक, आर्थिक स्तरों पर से हासिए पर रहा बल्कि साहित्यिक स्तर से भी उसे हासिए पर रखा गया । गोदान के होरी का चल बसना बडा दुखद तथा वेदनादायक लगा। घर की दहलीज के सामने गौं बाधने की इच्छा उसके मरने से समाप्त हो गई ऐसा लगा । पर नहीं, होरी की अतृप्त आत्मा का अभिशाप शायद वर्तमान किसानों को लग गया हो । भारत के अस्सी फीसदी लोग खेती करते हैं कई फीसदी वह हैं जो अपनी जीविका के लिए किसानों के मोहताज हैं । राष्ट्र के हाथ में जो कुछ विभुति हैं यही किसानों और मजदूरों की मेहनत का सदका हैं। राष्ट्र का अन्नदाता और वस्त्रदाता स्वंय अन्न के लिए मोहताज बन चुका हैं । जाडों में ठिठुरता, धुप में पसीने से लथपथ होता किसान जर्जर स्थिति पर आ पहुँचा है। आपको खोजने से भी हट्टा–कट्टा किसान मिलेगा नहीं ।

विदेशों में भी भारतीय किसानों का बोलबाला था । भारतीय किसानों का लोहा विश्व मानता था वे आज कल्पित कथा के पात्र मात्र से लगते हैं ।आज भारतीय किसान दरिद्रता ओर अज्ञानता के ऐसे गहरे गढें मे गिर पडा हैं कि उसकी थाह भी नहीं मिलती और न ही उसे कोई ऊपर उठाने का प्रयत्न किया जा रहा हैं। लगा आजादी के बाद भारतीय किसानों की स्थिति में सुधार हो सकेगा किंतु सुधार की अपेक्षा उसकी परिस्थिति दिन ब दिन बदतर होती गई । वर्तमान समय में किसानी समाज की हालात हासिए के समाज से भी भयानक बन चुकी है। क्योंकि दलित, स्त्री, अल्पसंख्यांक हासिए के समाज को विकास के दायरे में लाने का प्रावधान संविधान में ही प्रायोजित हैं। उसके अनुसार कार्य भी होते रहे हैं किंतु किसानी समाज व्यवस्था के सुधार की बात पर कोई विशेष प्रकार का न तो अतित में कोई अभियान चलाया गया ओर वर्तमान तथा भविष्य में इसकी कोई योजना दिख पडती है। दिन–रात मेहनत किसान करता रहे किंतु उसके उत्पाद का मोल भी कोई तिसरा व्यक्ति करे, जिसके चलते किसान की हालात कठीण होते गई। यही वजह है कि भारतीय किसान आत्महत्याओं की घटनाए बढ गई हैं। पंजाब से लेकर केरला तक महाराष्ट्र से पश्चिम बंगाल तक सारे राज्यों के किसान अर्थिक परेशानियों से तंग आकर आत्महत्या कर रहा है । राजनीति पार्टियों ने हर बार इसका लाभ जरुर उठाया हैं । किसानों को सुर्खियों में जरुर रखा गया, आत्महत्याग्रस्त किसानों की चिंताओं पर भी राजनीतिक पार्टियों ने स्वार्थ की रोटियां सेंक ली । पर किसानों की स्थिति जस की तस रह गई । दूर्भाग्य इस बात का है कि संवेदनशीलता की मुरत कहे जानेवाले साहित्यकारों ने भी किसानों की जर्जर हालात पर चुप्पी साध ली हैं यही सबसे टीस दे जाता हैं।

किसानों के प्रति असंवेदनशीलता के इस दौर में कथाकार राजू शर्मा ने 'हलफनामें' उपन्यास के जरिए किसानों के जीवन मरन के वसीयतनामें को सच्चाई के साथ उजागर किया है। स्वाधीनता के साठ साल बाद पता चला हैं कि, भारतीय किसान सरकारी तंत्र और और राजनीति के षडयंत्र मे अभिमन्यू की भांति चकव्यह मे फसता गया हैं। आजादी के पूर्व की जमीनदारी, स्वाधीन देश में साहुकारी की लुकाछुपी में बदल गई । साहुकारी व्याज की फास से सही सलामत छुटना असंभव था कि उसी में आसमानी संकट ने किसानों को झकझोरा जिसके चलतें किसानों की स्थिति दर्दनाक हुई ।सरकारी तंत्र ने दफ्तरों मे आंकडों के खेल से किसानों के जीवन को दावं पर लगा दिया है। राजु शर्मा जैसे विरले रचनाकारने किसानों की दशा

और दिशा को बेबाक रुप से जनता के सम्मुख प्रस्तुत किया है। 'हलफनामे' उपन्यास किसानों की आत्महत्या के संदर्भ पर लिखा गया हिंदी का संभवत: प्रथम उपन्यास हैं। यह सचमुच कितनी अजीब बात हैंकि यथार्थवाद का दिन रात जाप करने वाले हिंदी के किसी भी लेखक का ध्यान अब तक किसानों की आत्महत्या के इस यथार्थ पर क्यों नहीं गया ? प्रश्न उपस्थित होता हैं कि क्यां जानबुझकर इस विषय को नजरदांज तो नहीं किया गया । चमचमाती सडकें, साजो सामान से सजे माल्स, आंखें को चौकानेवाली गाडियां, करोडों की उलट फेर करते शेअर बाजार सब दिखता हैं । लेकिन जीवन की आवश्यकताओं की, अपने बच्चों की फीस अदा न कर पाने की विवशता से आत्महत्या करनेवाले किसान नहीं दिखे, कितनी बडी विडम्बना हैं कहा जाता हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ किसान हैं किंतु अब इस देश की रीढ ही चुर–चुर हो गई है।

भूमंडलीकरण, बाजारवाद के भागदौड भरे दौर में राजू शर्मा ने किसानों की स्थिति को उजागर किया हैं। 'हलफनामे' २००६ में प्रकाशित यथार्थवादी रचना हैं। राजु शर्मा ने प्रस्तुत उपन्यास में सरकारी तंत्र की रहस्यमयी दूनिया को परत–दर–परत उधेड़ते हैं । राजु शर्मा ने बडी प्रामाणिकता से सरकारी तंत्र के निकम्मेपण और बेईमानी के परतों की पोल खोली हैं । 'हलफनामे' रचना में सरकारी तंत्र की अव्यवस्था में सुरंग लगाकर अपने समय के सत्य को पकडने की बेबाक कोशिश की है।

राजु शर्मा प्रश्न उपस्थित करते हैं कि, किसानों के जीवित रहते सरकारी तंत्र ने विकास के कौन–कौणसे कदम उठाये? हां यह सच हैं कि, उसके आत्महत्या के बाद 'किसान आत्महत्या योजना' की घोषणा की जाती हैं। किसान आत्महत्या को लेकर लेबी बहस मात्र होती है। योजना के अमल का जो ड्राफ्ट नौकरशाह तैयार करते हैं वे उस पर आखिर में लिखा हैं कि, यह शासनादेश उन आत्महत्याओं पर लागू होगा जो दिनांक– के पश्चात घटित होगी । उपरोक्त दिनांक के पूर्व की आत्महत्या इस शासनादेश की परिधि में नहीं आयेगी, चाहे वो इस योजना की बाकी सभी शर्ते क्यों न पूरी करते हों। एक बात स्पष्ट हैं कि, ऐसी योजना का लाभ उसी किसान को मिलेगा जो एक निश्चित तिथि में ही आत्महत्या करेगा । 'हलफनामे' उपन्यास में भी ऐसी ही तकनीकी दिक्कत से परेशान किसान मकाई राम की व्यथा है। मकई राम के पिता कर्ज के बढ़ते बोझ से आत्महत्या करते हैं, उसे पता चलता हैं कि पिता स्वामी राम ने खुदखुशी कर ली हैं । किसान आत्महत्या योजना के अनुसार मुआवजा हासिल करने के लिए हलफनामा दाखिल करता हैं । प्रदेश में किसी किसान की आत्महत्या का यह पहला मामला था, सो अखबार और टी.व्ही. वाले मकई राम का इंटरव्युव लेकर किसानों की आत्महत्या का मानों उत्सव मना रहे हो । इसके बाद शुरु होती हैं शासनतंत्र की निर्दयता और फरेब का आख्यान हैं। मकई राम मुआवजे के लिए एक के बाद एक उन्नीस हलफनाम दाखिल करता हैं । अंत में उसे मुआवजा मिल जाता हैं। बहुत नाटकिय ढंग से मुख्यमंत्री, कलेक्टर आदि मंच पर उसके पिता की आत्महत्या का मुआवजा देते हैं। प्रश्न यही हैं कि काश यही सहायता आत्महत्या के पुर्व ही किसानों को मिल जाती ? बहरी और आंधी हो चुकी व्यवस्था को न तो यह बात सुनाई देती है और न दिखाई देती है। मुआवजे में मिले दो लाख काश की जीते जी मिल जाते तो तमाम किसान सही सलामत होते । पर हमारी सरकारी व्यवस्था किसानों की सही सलामती चाहती कहा हैं । स्वामी राम जैसे किसानों को आत्महत्या के लिए विवश करने वाले साहूकारो, लालाओं पर समय के चलते लगाम कस ली जाती तो भारतीय किसानों पर यह मुसीबत की स्थिति न आती ।

देश के विभिन्न हिस्सों मे आत्महत्या करनेवाले किसान भूमंडलीकरण के दौर की अर्थव्यवस्था में सुदखोरी के शिकार है। वरिष्ठ आलोचक मॅनेजर पाण्डेय लिखते है कि, भारत के किसान अंग्रेजी राज के जमाने में पूंजीवाद के अथाह, पाखंड और बर्बरता का सामना करते थे, आज पूंजीवाद के भूमंडलीकरण के दूसरे दौर में उस पाखंड और बर्बरता का ओर अधिक विस्तार हुआ है। जिसके कारण भारत के उन किसानों का भविष्य खतरे में हैं, जिनकी रक्षा की चिंता प्रेमचंद को

28

त्रिलोचन के काव्य में किसान चेतना की अभिव्यक्ति

डॉ. शेखर घुंगरवार
हिंदी विभाग,
वसंतराव नाईक महविद्यालय वसरणी, नांदेड

वर्तमान हिंदी साहित्य में विविध विमर्श सामने आ रहे है। चाहे वह स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, सत्ता विमर्श, अल्पसंख्याक विमर्श, किन्नर विमर्श की मांग तेजी से बढ़ रही है, उसी के साथ किसान विमर्श भी बढ़ रहा है। 'किसान–चेतना' उत्तर आधुनिक विमर्शो की नई संकल्पना है।

त्रिलोचन मुलत: किसान परिवार में जन्मे थे। उनकी चेतना मुलत: किसान चेतना है। अत: अपनी सहज सहृदयता व सरलता के कारण वे किसान जीवन सेस काफी घुल मिल गये थे। प्रेमचंद ने भी अपने साहित्य में किसान चेतना को अभिव्यक्ति दी थी। पर वे भारतीय जनता की क्रांतिकारी हलचल को देखने के लिए जीवित नही रहे, लेकिन उन्होंने अपनी रचनाओं का नायक संघर्षशील गरीब किसान, मजदूर या नीची जाति के लोगों को ही बनाया। त्रिलोचन को भी प्रेमचंद, नीराला, नागार्जुन तथा केदारनाथ अग्रवाल की भांति गरीब किसानों, मजदूरों तथा शोषितों से विशेष प्रेम तथा गहरी सहानुभूति है। उन्होंने भी अपनी कविताओं में किसान जीवन पर कथा–व्यथा को विभिन्न संदर्भ संकेतों से विचारों को विश्लेषित करते हुए पुंजीपति वर्ग के विरोध में आवाज उठाकर किसानों में क्रांतिकारी चेतना का विकास किया।

हिंदी में किसान जीवन को केंद्र बनाकर कविता करनेवालों कवियों की कमी नहीं है। उनमें से अधिकांश कवि मध्यमवर्गीय दृष्टि से किसान–जीवन के यथार्थ को देखते है। वह कभी समय की मांग तो भी । भारतीय किसानों के ऋण की समस्या प्रेमचंद के समय से भी थी लेकिन आज वह अधिक विकराल रूप धारण कर चुकी है।

विशेष क्षेत्र विकास(सेज) के नाम पर, हायवे विस्तीर्ण, बांध विस्तीर्ण आदि के रूप में किसानों की जमीने हडप कर ली जा रही है। अब किसान अपनी ही जमीन से बेदखल हो रहा है सन १९४१ के ४ अप्रैल को हजारी बाग जेल में कैद सहजानंद सरस्वती ने लिखा है "अगर यही हालात बनी रही तो सत्तर साल बीतते न बीतते सभी किसान बिना जमीन के रह जायेंगे।" लगता है कि २०२० तक आते– आते स्वामी सहजानंद की वाणी सच होती नजर आ रही है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत की नौका को हमेशा से किसानों ने अपने कंधो पर उठाया है। किसानों ने ही भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व में पहचान दिलाई । आज जब की स्वंय किसान की ही नौका डूबती नजर आ रही है,पर उसे बचाने के लिए कौन तैयार है। भारतीय किसानों को बचाने की आस राजू शर्मा जैसे रचनाकारों को है जो चाहते कि किसान बचेगा तो भारत तथा भारत का भविष्य बचेगा । वर्तमान समय में किसान ही सबसे हासिए का समाज है।

संदर्भ ग्रंथ

१. हलफनामे –राजू शर्मा –गधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली २००६
२. हंस विशेषांक २०१०

❑❑❑

आंतरराष्ट्रीय बहुभाषिक शोध पत्रिका

प्रिंटिंग एरिया

Printing Area International Interdisciplinary Research Journal in Marathi, Hindi & English Languages

June 2021, Issue-03, Vol-01

अतिथि संपादाक :

१. डॉ. राठोड अनिलकुमार

२. डॉ. शिवशेट्टे गोविंद

३. डॉ. भगवान कदम

४. डॉ. शिंदे प्रकाश

५. डॉ. शेख मुखत्यार

६. डॉ. वारले नागनाथ

७. डॉ. यशवंतकर संतोषकुमार

"Printed by: **Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.** Published by **Ghodke Archana Rajendra** & Printed & published at Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.,At.Post. Limbaganesh Dist,Beed -431122 (Maharashtra) and Editor **Dr. Gholap Bapu Ganpat.**

Reg.No.U74120 MH2013 PTC 251205

Harshwardhan Publication Pvt.Ltd.

At.Post.Limbaganesh,Tq.Dist.Beed

Pin-431126 (Maharashtra) Cell:07588057695,09850203295

harshwardhanpubli@gmail.com, vidyawarta@gmail.com

All Types Educational & Reference Book Publisher & Distributors www.vidyawarta.com

57) 'वरुण के बेटे' उपन्यास में चित्रित जीवन
डॉ. (श्रीमाती) राजु एस. बागलकोट, विजयपुर ||204

58) बिरसा मुंडा के जीवन संघर्षों की महागाथा : धरती आबा (नाटक)
डॉ. अनिलकुमार रामधन राठोड, जि. लातूर ||208

59) आदिवासी समाज जीवन की समस्या
डॉ. गोविंद गुंडप्पा शिवशेट्टे, जि. लातूर ||211

60) समकालीन हिंदी उपन्यासों में दलित चेतना
डॉ.वसंत पुंजाजीराव गाडे, औंढा नागनाथ ||215

61) दलित–विमर्श : स्वानुभूति बनाम सहानुभूति का सवाल
डॉ० अशोक कुमार मीणा, अलवर ||217

62) हिंदी साहित्य में दलित विमर्श
डॉ. कुमारी प्रेमलता, भागलपुर ||227

63) हिंदी दलित उपन्यासों में नारी
एल. अनिल, हैदराबाद ||230

64) साहित्य में दलित चेतना
शाहिद हुसैन, बिलासपुर (छ.ग.) ||234

65) गिरिराज किशोर के उपन्यास 'परिशिष्ट' में अभिव्यक्त दलित छात्रों की समस्यायें...
श्याम सिंह, मेरठ (उत्तर प्रदेश) ||237

66) अस्मिता और अस्तित्व को बचाने की संघर्ष गाथा : मोहन दास दलित विमर्श के...
डॉ. प्रकाश भगवानराव शिंदे, जि नांदेड़, महाराष्ट्र ||241

67) दलित विमर्श
स्मिता शिवाजी शिंदे, कोल्हापुर ||245

68) अंबेडकर दर्शन और दलित साहित्य
डॉ. श्रद्धा हिरकने, बिलासपुर (छ.ग.) ||249

69) आलोचना के क्षेत्र में दलित आलोचकों का योगदान
डॉ० श्रीकान्त शुक्ल, जिला–सतना (म०प्र०) ||253

70) हिंदी आत्मकथाओं में दलित चेतना और स्त्री प्रश्न
श्रीलेखा कुमारी ||256

71) हिंदी कविता में दलित विमर्श
Dr. Sibi M M, Kothamangalam, Kerala ||259

http://www.printingarea.blogspot.com
www.vidyawarta.com/03

दी है मैंने। हथियार मत छोड़ना। एक दिन तुम्हें ही जितना है। लौटकर आऊँगा मैं... जल्दी ही लौटूँगा अपने जंगलों में अपने पहाड़ों पर।...मुंडा लोगों के बीच फिर आऊँगा मैं।...तुम्हें मेरे कारण दुख न सहना पड़े इसलिए माटी बदल रहा हूँ मैं।...उलगुलान खत्म नहीं होगा।''११ इसप्रकार नाटक के अंत पूर्व में बिरसा मुंडा के अंतिम मार्मिक, आवाहनात्मक एवं संवेदनशील संवाद को नाटककार हृषीकेश सुलभ जी ने प्रस्तुत कर बिरसा मुंडा तथा उनके उलगुलान आंदोलन को यथोचित न्याय देने का भरसक प्रयास किया है। यही कारण है कि कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से नाटककार की यह नाट्यकृति सफल एवं सार्थक बन पड़ी है।

अंतत्वोगत्वा यही कहा जा सकता है कि, नाटककार ने प्रस्तुत नाटक के माध्यम से बिरसा मुंडा के जीवन संघर्षो के द्वारा आदिवासी समुदाय के जीवन संघर्षो को उजागर किया है। बहरहाल बिरसा मुंडा के संगठनात्मक कौशल ने लोगों को प्रेरित किया और उन्हें अंग्रेजी सत्ता, दिकुओं, महाजनों, जमींदारों और ठेकेदारों के चंगुल से बचाया और साथ ही आदिवासी जमीन पर पूर्ण स्वामित्व बात रखी। बिरसा मुंडा के इतिहास से हमें आज के संघर्ष के लिए अनेकों सिख मिलती है। जिस तरह आज आदिवासिओं पर अत्याचार बढ़ रहे है और उपनिवेशवादी नीतियाँ सरकारी नीतियाँ बन रही है, बिरसा का इतिहास और उनके सिध्दांत भविष्य के आदिवासी आंदोलनों के लिए एक ऐतिहासिक उदाहरण पेश करता रहेगा।

संदर्भ सूची :

१. इक्कीसवीं सदी के कथा साहित्य में चित्रित विविध विमर्श — सं. डॉ. माधव मुंडकर, रिसर्च जर्नल दिसंबर २०१९ पृ.सं. ०७

2- www.abhivyakti-hindi-org.

३. धरती आबा—स्वगत— हृषीकेश सुलभ, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली पृ.सं. १०

४. धरती आबा — हृषीकेश सुलभ, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली पृ.सं. ७०

५. वही पृ.सं. ७०

६. वही पृ.सं. २९

७. वही पृ.सं. ३७

८. वही पृ.सं. ७४,७५

९. वही पृ.सं. ८४

१०. वही पृ.सं.९१

११. वही पृ.सं. ९५

59

आदिवासी समाज जीवन की समस्या

डॉ. गोविंद गुंडप्पा शिवशेट्टे

हिंदी—विभाग,

महाराष्ट्र महाविद्यालय, निलंगा, जि. लातूर

कई सदियों से हशिए पर रहा आदिवासी समाज आज नक्सलवाद, ऑपरेशन 'उलगुलान', 'ग्रिनहंट' की त्रासदी के कारण संवेदनशील रचनाकारों, नेताओं, समाजसेवियों के बीच चर्चा और विमर्श का प्रमुख केंद्र बन गया है । यूँ तो आदिवासियों की हत्या करने, शोषण करने और खदेड़ने का कार्य अरसो—बरसों से जारी है । उन्हें एक सोची समझी साजिश के साथ दुर्गम जंगलों, पहाड़ों में सभ्यता से दूर आदिम जीवन जीने के लिए मजबूर किया गया । यहाँ के तथाकथित प्रस्थापितों ने आदिवासियों पर अपना आतंक बनाए रखने के लिए न उनकी संस्कृति को विकसित होने दिया और न ही उन्हें मूल धारा में शामिल किया बल्कि इस समाज को दैत्य, राक्षस करार देकर उसके इतिहास और संस्कृति को बदनाम किया, फलस्वरूप इस समाज की सोच, विचार, भाषा, संस्कृति का विकास रूक गया और सभ्यता के दौड़ में वे पीछे पड़ते गये । यह लोग अन्य दुनिया से बेखबर, दुर्गम जंगलों, गुफाओं में अनेक मुसीबतों का सामना अपने कठिन परिश्रम और साहस के साथ कर उन्होंने अपना अस्तित्व ही नहीं बचाया तो अस्मितता, आस्था, परंपरा और संस्कृति को भी कायम रखकर अपनी विशिष्ट पहचान बनाए रखी । इस प्रकार प्रकृति की गोद में पैदा हुआ, पला और जवान हुआ यह आदिवासी प्रकृति की तरह ही सहनशीलता की सीमा तक अत्याचारों को सहने की क्षमता रखता है और उसके समाप्त होते ही प्रकृति की तरह ही ज्वालामुखी और दावाग्नि—सा रौद्र रूप धारण कर अन्यायी अत्याचारियों

पर अपना पूरा क्रोध, असंतोष, तीरों, कुल्हाडियों, भालों और गुलेलों के पथरों से प्रतिकार जाहिर करता संघर्ष पर उतरता है ।

सामान्यत: भारतीय आदिवासी समाज की समस्याएँ दो प्रकार की है। प्रथम प्रकार की समस्या स्वयं आदिवासियों की जीवन पध्दति से निर्माण हुई है, तो दूसरे प्रकार की समस्या आदिवासी समाज के संपर्क में अन्य समाज तथा संस्कृति के आने से निर्माण हुई है, इसीलिए आदिवासी समाज की समस्याएँ जितनी आसान एवं सहज है, ऐसा लगता है उतनी वे है नहीं अर्थात आदिवासियों की समस्याओं को पूर्णत: समझने के लिए उसका अध्ययन निम्न रूप से करना होगा।

सामाजिक समस्या :

ग्रामीण तथा नागरी समाज के संपर्क में आने से अलिप्त रहनेवाले आदिवासियों के सामाजिक जीवन में प्राकृत जीवन प्रणाली, भाषा, व्यसनाधीनता, वेश्यावृत्ति, गुप्तरोग, बालविवाह, दहेज प्रथा, समाज की अपेक्षा व्यक्ति की बढ़ती प्रतिष्ठा, मूल्य संक्रमण जैसी अनेक समस्याएँ निर्माण हुई है। आधुनिक समाज के संपर्क में आने से इस समाज में व्याप्त सामुहिकता की भावना समाप्त होकर, व्यक्तिवादी भावना बढ़ रही है । जिसके कारण इस समाज की सामाजिक एकता नष्ट होकर व्यक्तिगत राग–द्वेष निर्माण हो रहा है, परिणामत: अनेक नए प्रश्न इस समाज के सामने निर्माण हो रहे हैं। आद्यौगिक क्षेत्र में काम करनेवाली आदिवासी महिलाओं में वेश्या व्यवसाय पनपने लगा है, जिसके कारण इस समाज का सामाजिक स्वास्थ्य खतरें में आया है। एड्स जैसे गुप्त रोगों से आदिवासी स्त्री–पुरुष पीड़ित हो रहे है। अन्य समाज की अनिष्ट प्रथा, बालविवाह, दहेज प्रथा, अपराध, चोरी, डकैती, भीख माँगना, शराब पीना, उच्च–नीचता की भावना आदिवासियों में प्रवेश करने लगी है।

संथाल, मुंडा, ओराँव, लेप्चा, जारवा, आदि आदिवासी आज भी मनुष्य की मूलभूत आवश्यकता रोटी, कपड़ा और मकान से भी वंचित है। शिक्षा और स्वास्थ्य से यह इतने दूर है कि, कुछ कहने नहीं बनता। निरक्षरता के कारण इन्हें जादू, डायन, भूत–प्रेत संबंधी घनिष्ट विश्वास है। आदिवासी महिला का जीवन तो नरक के समान है। उसका जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक स्तरों पर शारिरीक, मानसिक और लैंगिक शोषण होता है। शिक्षित और अशिक्षित आदिवासी आज एक दूसरें को शक की नज़र से देखते हैं। परिणामत: आदिवासी समाज में आज व्यापक स्तर पर विघटन की प्रक्रिया हो रही है। हर आदिवासी समूह की सामाजिक समस्या अलग–अलग है। यह समाज अज्ञान, अंधकार, अंधविश्वास और कर्मकांड़ में भी लिप्त दिखाई देता है। नक्सलवाद और विस्थापन की समस्या ने तो आदिवासी समाज के अस्तित्व को ही खतरें में डाला है।

आर्थिक समस्या :

भारत के विभिन्न प्रदेशों में रहनेवाले अधिकतर आदिवासियों के जीविका का साधन जंगल, जमीन एवं मजदूरी है। अत्यधिक दरिद्रता यह उनकी प्रमुख आर्थिक समस्या है, जिसके चलते आदिवासियों को भरपेट खाना भी नहीं मिलता। जंगली फल, कंदमूल खाकर ही वे अपना गुजर–बसर करते हैं। भारत में अस्सी प्रतिशत आदिवासियों के पास जमीन नहीं है, सरकारी विकास योजना भी उन तक पहूँचती नहीं है अत: भूख से बेहाल आदिवासी नक्सलवादियों के जाल में अपने–आप फँस जाते हैं। पूर्णत: जंगलों पर निर्भर रहनेवाले इस समाज को पहले अंग्रेज सरकार ने और सन १९५२ में भारतीय सरकार ने 'राष्ट्रीय वननीति' के अंतर्गत कानून बनाकर उनका जंगल पर का अधिकार छीन लिया परंतु उनको पर्यायी अर्थार्जन का साधन उपलब्ध नही करा दिया । परिणामत: वनअधिकारी, ठेकेदार, पुलिस आदिवासियों का आर्थिक, मानसिक और लैंगिक शोषण करने लगे। वस्तुविनिमय पद्धति की प्रधानता वाले इस समाज को रूपये की अर्थनीति ने अनेक सवालों से घेर रखा है।

अपनी उत्सवधर्मिता और अत्यधिक व्यसनाधीनता के कारण आदिवासियों में ऋणग्रस्तता अधिक दिखाई देती है, इनके अज्ञानता का लाभ साहूकार, पूँजीपति लोग उठाकर उन पर कई प्रकार की शर्तें लादते रहते हैं। उनके शोषण से वे किसान से बंधुआ मजदूर बन जाते हैं। इतना ही नहीं तो यह

साहूकार लोग अपने पैसे के बदले में उनके घर, जमीन, पशु आदि के साथ स्त्रियों को भी रिहान के रूप में अपने पास रख लेते हैं। आर्थिक विवशता से तंग आकर इस समाज की महिलाएँ वेश्या व्यवसाय की ओर आकर्षित हो रही है, जिसके कारण अनेक समस्याएँ निर्माण हो रही हैं।

औद्योगिक क्षेत्र में निवास करनेवाले संथाल जैसे आदिवासियों की अलग समस्याएँ हैं। औद्योगिक विकास के नाम पर उनकी जमीन छीन ली जाती हैं, उसका योग्य मुआवजा भी उनको नहीं मिलता। चाय, बगीचों कोयला खदान आदि में मजदूरी करनेवालों का ठेकेदार आर्थिक शोषण करते हैं इस संदर्भ में डी. एन. मजुमदार ठीक लिखते हैं कि, ''आदिवासी गुरासारखे काम करतात व त्यांना वागणुक देखिल गुरांसारखीच दिली जाते. एखाद्या पशु प्रमाणे ते प्रदर्शनीय ठरतात. पशु प्रमाणेच त्यांना नियंत्रित ही केले जाते.''[१] देश में नए—नए बसनेवाले लोह, पोलाद, सिमेंट, बीजलीघर, बांध आदि योजना से आज तक लाखों आदिवासियों को विस्थापित होना पड़ा हैं, उनका उचित पुनर्वसन नहीं किया गया है। इस प्रकार दरिद्रता, कुपोषण, बेकारी, ऋणग्रस्तता, बंधुआ मजदूरी, घटते जंगल, विस्थापन आदि आदिवासियों की प्रमुख आर्थिक समस्याएँ हैं।

राजनीतिक समस्या :

आदिवासी समाज की अपनी एक विशिष्ट राजनीतिक व्यवस्था प्राचीन काल से लेकर ब्रिटिश काल तक अस्तित्व में थी। आदिवासियों की सभी समस्याओं को यहीं पर ही सुलझाया जाता था । हर जनजाति का प्रतिनिधि या नेता इस व्यवस्था का सदस्य रहता था किंतु स्वातंत्रोत्तर काल में इनकी राजकीय व्यवस्था का ऱ्हास हो रहा है। भारतीय संविधान द्वारा प्रयुक्त चुनावी प्रक्रिया अज्ञानी आदिवासियों के लिए पूर्णत: नवीन है, जिसमें केवल रईसों, पूँजीपतियों और गुंड़ों का बोलबाला है, दूसरी ओर इस समाज को स्वयं के अधिकार, कर्तव्य और वोट का मूल्य ज्ञात नहीं है जिसका लाभ उठाकर ऐसे लोग उनके अमूल्य वोट शराब आदि के बदले खरिद लेते हैं। परिणामत: इस समाज जीवन में जो परिवर्तन आना चाहिए था, वह नहीं आया। अपनी अविकसित परिस्थिति से तंग होकर आदिवासियों की नई पीढ़ी में विद्रोह की भावना तीव्र से तीव्रत्तर होती जा रही है। आदिवासी युवक—युवतियों के इस असंतोष का लाभ नक्सलवादी लेकर जंगली प्रदेशों में एक समांतर सरकार प्रस्थापित कर रहे हैं। उचित नेतृत्व के अभाव में आदिवासी बहुल प्रदेशों में भी आदिवासी आज तक सत्ता से दूर ही रहा हैं। सरकार आदिवासियों के विकास पर ध्यान देने की अपेक्षा नक्सलवाद को समाप्त करने का प्रयास कर रही है, जिससे यह संघर्ष अधिक तीव्र हो रहा है।

धार्मिक समस्या :

आदिवासी समाज का अपना एक विशिष्ट प्राकृत धर्म है। जैसे उराँव का 'सरणा धर्म' है। इनकी धार्मिक श्रद्धा में सर्वात्मवाद, जीववाद, बहुदेवतावाद, एकेश्वरवाद, जादू—टोना, प्रेतात्मा आदि का समावेश होता हैं। धर्म ही आदिवासी समाज के सामाजिक नियंत्रण का प्रभावी साधन है किंतु आदिवासी समाज की प्रमुख धार्मिक समस्या धर्मांतर की हैं। हजारों वर्शो से आदिवासियों को अपना धार्मिक अस्तित्व बचाने के लिए आर्य, ईसाई और मुसलमान धर्म से संघर्ष करना पड़ा है, जो आज भी जारी है। इस्लामी आक्रमणकारियों ने तलवार के बल पर उनको मुसलमान बनाया तो ''मुसलमान सूफियों ने दलितों के साथ आदिवासी क्षेत्रों में समता का प्रचार कर उनके खान—पान में सम्मिलित होकर उन्हें इस्लाम का अनुयायी बनाया हैं।''[२] भारत में आए ईसाईयों के सेवाभाव और मानवतावाद से प्रभावित होकर और हिंदू धर्म के राजाओं की मनमानी जमींदार के अत्याचार, शोषण, बेठबिगारी और आतंक से तंग आकर लाखों की संख्या में आदिवासी ईसाई बने उसमें भी अधिकतर आदिवासियों को अंग्रेजों ने छल और बल से ईसाई बनाया। आज आदिवासी क्षेत्र में अनेक हिंदू संघटन, धर्माचारी, मठाधिश, 'आदिवासियों की घर वापसी' के नाम पर उन्हें हिंदू बना रहे हैं, जो आदिवासियों की प्रमुख धार्मिक समस्या है किंतु हजारों सालों से धर्मांतर की प्रक्रिया में रहते हुए भी आदिवासियों के जीवन में कोई अंतर नहीं आया हैं, हाँ इतना जरूर हुआ है कि वे अपने मूल समूह से अलग हो गए हैं।

धर्मांतर करनेवालों को उनका मूल समाज उपेक्षा के भाव से देखता है, जिससे आदिवासी समाज में सामुहिकता की भावना का अभाव, बढ़ता सामाजिक, धार्मिक तनाव जैसी अनेक समस्याएँ निर्माण हुई है।

सांस्कृतिक समस्या :

सभ्य समाज के संपर्क में आने से आदिवासी जीवन में अनेक सांस्कृतिक समस्याएँ निर्माण हुई है। ''नयी आदतें और अपरिचित जीवन नीति ग्रहण करने पर वे अपने को जनजाति बंधुओं से पृथक हुआ पाते है, लेकिन उन्हें उन लोगों के बराबर स्वीकार नहीं किया जाता जिनकी जीवन रीति का वह अनुकरण करते या उसे ग्रहण करते है।''[३] प्रगत समाज के संपर्क से आदिवासी समाज में रहन–सहन, वेशभूषा, आहार, नीति मूल्य आदि में परिवर्तन आने लगा है, परिणामत: आदिवासियों की जीवन पद्धति, भाषा और लोककलाओं का ऱ्हास हो रहा है। आदिवासियों के सामाजिक संघठन में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करनेवाली उनकी संस्कृति एक महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था थी । इस समाज की एक सांस्कृतिक पहचान थी किंतु ख्रिश्चन, मुसलमान और हिंदू समाज के संपर्क से इसका व्यापक स्तर पर आज पतन हो रहा है तथा इसमें अनिष्ट प्रथाओं का समावेश होने से आदिवासी समाज की पारंपारिक, सांस्कृतिकविरासत ही आज खतरें में आ गई है। अन्य भाषा–भाषी समाज के संपर्क से तथा शिक्षा पद्धति के कारण आज आदिवासी अपनी मूल मातृभाषा से दूर जा रहा है। ''बिहार में मुंडा भाषाओं का स्थान धीरे–धीरे बिहारी बोलियाँ ले रही है और ऐसी जनजातियों की कमी नहीं है, जो बंगला भाषा समझती और बोलती है... बिहार के संथालों ने तो बंगला को अपना लिया है।''[४] इस प्रकार ख्रिचन धर्म स्वीकारने के कारण अनेक आदिवासी अंग्रेजी भाषी बने हैं। आदिवासियों की नई पीढ़ी का सुशिक्षित युवक वर्ग आज अपनी परंपरागत कला, चित्रकारी, संगीत, नृत्य, मूर्तिकला, बोलीभाषा, वेशभूषा आदि को भूलता जा रहा है, जो एक चिंता का विषय है। आज आदिवासी इलाकें में दिन–ब–दिन बढ़ते औद्योगिकरण, बांधयोजना आदि से विस्थापन एवं अन्य समाज के संपर्क से अपनी पारंपारिक विशुध्द सांस्कृतिक परंपराएँ जीवित रखना आदिवासियों के लिए एक बहुत बड़ी चुनौति बन गयी है क्योंकि ऐसी जगह पर एक बहुमिश्रित संस्कृति पनप रही है, शिक्षित आदिवासियों में पारंपारिक आदिवासी धर्म जादू, टोटका, मेले आदि पर की श्रद्धा कम हो रही है। परिणामत: उत्सव और उत्साह प्रिय आदिवासी समाज आज नाउम्मीद और दुर्बल बनता जा रहा है, उनकी एकता की भावना नष्ट होकर परस्पर ईर्ष्या भाव बढ़ रहा है।

स्वास्थ्य संबंधी समस्या :

आदिवासियों की स्वास्थ विषयक प्रमुख समस्या पोषण युक्त भरपेट अन्न का अभाव है। अधिकतर आदिवासी अन्न की खोज में जंगल–जंगल भटकते रहते हैं। दिन–ब–दिन कम होते जंगल और शिकार पर कानूनी प्रतिबंध के कारण अब उन्हें केवल जंगल से मिलनेवाले फल, कंदमूल आदि पर ही गुजारा करना पड़ता है परिणामत: अपने दरिद्रिता और कुपोषण के कारण वे अनेक रोगों का शिकार हो जाते हैं। आदिवासी बहुल इलाके दुर्गम स्थानों पर होने के कारण वहाँ स्वास्थ्य सुविधा केंद्र का अभाव होता है । उसमें भी अज्ञान, अंधविश्वास के कारण यह लोग अस्पताल में आने तथा डॉक्टर से घबराते हैं परिणामत: अनेक आदिवासी उचित इलाज के अभाव में मर जाते हैं।

आदिवासी समाज प्रमुख रूप से रोटी, कपड़ा और मकान से ही दूर है स्वास्थ्य और शिक्षा से अभी–अभी उनका परिचय हो रहा है। इनके स्वास्थ्य विषयक समस्या का मूल कारण उनकी अशिक्षा, व्यसनाधीनता है, साथ ही शुद्ध और स्वच्छ पीने के पानी का अभाव होने से यह लोग टायॅफाईड, कॉलरा जैसी भयंकर बीमारी से ग्रस्त होते हैं। अस्वच्छता के कारण वे त्वचा रोग तथा गुप्त रोगों के शिकार होते हैं। औद्योगिक क्षेत्र में निवास करनेवाले आदिवासी वहाँ के भयंकर प्रदूषण के कारण सर्दी, खाँसी, दमा, टी. बी. तथा फेफड़े के रोगी बन जाते हैं। ''छोटानागपुर में खानों की कंपनियों ने पीछले दषकों में आदिवासियों के श्रम से असाधारण मुनाफा कमाया है किंतु श्रमिकों के लिए उन्होंने एक कुएँ या स्कूल तक का निर्माण नही किया। डॉक्टरी सहायता, सफाई और स्वास्थ्य सेवाओं

का तो जिक्र ही क्या ?।'[५] इस प्रकार कुपोषण, दूषित पानी, शारीरिक अस्वच्छता, औद्योगिक प्रदूषण, अंधविश्वास, अज्ञान और आरोग्य सुविधाओं का अभाव के कारण आदिवासी समाज में अनेक में बिमारियों का प्रचलन बढ़ रहा है परिणामत: उनका स्वास्थ्य खतरें में आने लगा।

उपरोक्त सभी समस्याएँ आदिवासी समाज की है, वे केवल आदिवासी पुरूषों की या महिलाओं की समस्या नहीं है तो कुल आदिवासी समाज ही प्रगत समाज से अनेक बिंदुओं पर हजारों साल पीछड़ा हुआ है, इसीलिए आदिवासी स्त्री या पुरूष ऐसा विचार यहाँ पर अपेक्षित नहीं है। स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार तथा राज्य सरकार अपने संवैधानिक उत्तरदायित्व के अनुरूप आदिवासी समाज के विकास और उत्थान के लिए विभिन्न योजनाओं के माध्यम से प्रयास कर रहे है आवश्यकता हैं यह योजनाएँ पूरी तरह उन तक पहुँचाने की। इसके साथ ही आदिम जाति सेवक संघ, वनवासी कल्याण आश्रम, भील सेवा मंडल, प्रकाश आमटे, अभय बंग, स्वामी अग्निवेश, मेधा पाटकर, रमणिका गुप्ता, के. आर. शहा जैसे अनेक आदिवासी तथा गैर आदिवासी स्वयंसेवी संस्थान–व्यक्ति आदिवासियों की सामाजिक, आर्थिक उन्नति के लिए कार्यरत है, जिससे आदिवासियों का यथायोग्य विकास होकर वह राष्ट्र की मुख्य धारा में आने की आशा की जा सकती है।

संदर्भ सूची

१ डॉ. डी. एम. मजुमदार/टी. एन. मदन, सामाजिक मानववंशशास्त्र का परिचय, पृ.सं. १७४

२ सं. के. आर. शहा, पत्रिका मासिक आदिवासी सत्ता, जुलाई २०१० पृ.सं., १९

३ डॉ. डी. एन. मजुमदार, भारत की जन संस्कृति, पृ.सं. ११५

४ वही, पृ.सं. ११०

५ वही, पृ.सं. १२२

❑❑❑

60

समकालीन हिंदी उपन्यासों में दलित चेतना

डॉ.वसंत पुंजाजीराव गाडे
हिंदी विभागप्रमुख,
नागनाथ महाविद्यालय, औंढा नागनाथ

****

इ.स. १९६०–६५ के आसपास दलित आंदोलन का प्रारंभ हुआ। दलित – साहित्य शब्द के संकुचित अर्थ के अनुसार दलित जाति के साहित्यिक व्दारा रचित दलितों सम्बधी साहित्य ही दलित साहित्य कहलाता है। अर्थात केवल नव बौध्दों, अस्पृष्यों या जिन पर हजारों वर्षो से अन्याय हुआ है, ऐसे दबे हुऐ हरिजनों, आदिवासियों से सम्बधित, परंतु उनकी ही जाति में उत्पन्न साहित्यिक के व्दारा लिखा गया साहित्य दलित साहित्य है। दलित चेतना या दलित अनुभूति का पहला विस्फोट मराठी में कविता तथा आत्मकथा इन दो विधाओं में पूरी सशक्तता के साथ हुआ। जब इन मराठी रचनाओं के हिंदी अनुवाद छपने लगे, तो उससे प्रेरणा लेकर हिंदी में दलित अनुभूति व्यक्त होने लगी। दलित चेतना मूलत: वर्ण – व्यवस्था के तहत जारी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दमन के प्रतिरोध और प्रतिकार की चेतना है। दलित चेतना जातिवाद दंश से उपजा सवाल है जो साहित्य के स्तर अंधश्रध्दा शब्द प्रामाण्य, ग्रंथ प्रामाण्य, आत्मा, ईश्वर और उस पर आधारित समस्त नैतिकता और धर्मसत्ता को अस्वीकार करता है। दलित समाज सदियों से पीछडा हुआ समाज है। प्राचीन काल से इस समाज–समूह पर अन्याय–अत्याचार उच्चवर्णीय लोगों व्दारा होता आया है। उन्हें शिक्षा लेने का अधिकार न होने के कारण उनमें अंधश्रध्दा, अज्ञान का फेलाव होने के कारण उच्चवर्णीसयों ने उनका शारीरिक, आर्थिक तथा मानसिक शोषण करके उनका मनुष्य रूप में जिने

Volume - I

ISSN 2349-638x
Impact Factor 5.707

॥ श्रम एव जयते ॥

दे.भ.बा.भा.खंजिरे शिक्षण संस्था संचलित

नाईट कॉलेज ऑफ आर्ट् अँड कॉमर्स, इचलकरंजी

तहसील हातकणंगले, जिला कोल्हापूर

एक दिवसीय

राष्ट्रीय संगोष्ठी

विषय

इक्कीसवीं सदी के हिंदी कथा साहित्य में चित्रित विविध विमर्श (सन् 2010 से अब तक)

07 Dec. 2019

Sr. No.	Name of the Author	Title of the Paper	Page No.
		आदिवासी विमर्श	
1	श्रीमती अंजना दुबे	इक्कीसवीं सदी हिन्दी कथा साहित्य में चित्रित आदिवासी विमर्श (२०१० से अब तक)	1
2	डॉ. भारत श्रीमंत खिलारे	इक्कीसवी सदी के हिंदी कथा साहित्य में चित्रित आदिवासी विमर्श (रमणिका गुप्ता के 'सीता' उपन्यास के विशेष संदर्भ में)	4
3	प्रा. डॉ. हेमलता काटे	'पगहा पगहा जोरी जोरी रे' घाटो कहानी संग्रह में चित्रित आदिवासी नारी का जीवन	7
4	डॉ प्रकाश कृष्णा कोपर्ड़े	सहअस्तित्व चिंतन : आदिवासी कविता	10
5	डॉ. प्रिया ए.	आदिवासी विमर्श के परिप्रेक्ष्य में समकालीन हिंदी कहानी	14
6	सूर्यकांत त्रिपाठी निराला	इक्कीसवीं सदी के हिंदी कथा साहित्य में चित्रित विविध विमर्श (आदिवासी विमर्श)	16
7	डॉ. विश्वनाथ देशमुख	'आंध' आदिवासी जमाती की लोककथाओं में चित्रित 'रामकथा'	19
8	विक्रम बालकृष्ण वारंग	समकालीन हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी नारी का जीवन–संघर्ष	23
9	व्यंकट धारासुरे	विमुक्त एवं घुमंतू जनजातीय आत्मकथा लेखन की परंपरा	25
		भूमंडलीकरण विमर्श	
10	प्रा. अर्चना वसंत तराल	भूमंडलीकरण और युवा मानसिकता	27
11	डॉ.भगवान रामकिशन कदम	भूमंडलीकरण और हिंदी भाषा	29
12	*डॉ: दत्ता शिवराम साकोले*	*भूमंडलीकरण और इक्किसवीं सदी की कहानी*	31
13	डॉ. दीपक रामा तुपे	भूमंडलीकरण के परिप्रेक्ष्य में जानकीदास तेजपाल मैनशन	34
14	डॉ.गोविंद गुंडप्पा शिवशेट्टे	हिंदी कविता में बाजारवाद (भूमंडलीरण के विशेष संदर्भ में)	36
15	प्रा. सौ. मानसी संभाजी शिरगांवकर	भूमंडलीकरण और साहित्य	40
16	डॉ. नाजिम शेख	सन २०१० के बाद की हिंदी कविता में भूमण्डलीकरण	44

हिंदी कविता में बाजारवाद
(भूमंडलीरण के विशेष संदर्भ में)

डॉ.गोविंद गुंडप्पा शिवशेट्टे
सहायक प्राध्यापक
हिंदी– विभाग
महाराष्ट्र महाविद्यालय,निलंगा,जिला लातूर

भूमंडलीकरण एक व्यापक तथा जटिल प्रकिया हैं।कुछ विदवांन इसे वैश्विकीकरण, बाजारवाद, उदारीकरण, व्यापारवाद और जागतिकीकरण आदि नामो से अभिहित कर अर्थ का प्रतिपादन करते दिखाई देते है। भारतीय विदवांन इसे विश्वकुटूंबकम् के रूप में देखते हैं।दुनिया के विभिन्न देशों में आपसी सहयोग की वृत्ति बढाना इसका मुल लक्ष्य नहीं हैं।बल्कि शुध्द व्यापारवाद हैं या बाजार को अपने नियंत्रण में लेने की बात है।सर्वविख्यात हैंकि दुनिया विकसित और अविकसित दो खेमों में विभक्त हैं। विकसित राष्ट्रों ने अपने उत्पाद को दुनिया भर मे बेचने तथा मुनाफा कमाने की दृष्टि से बनाई गयी नीति हैं यह। भूमंडलीकरण एक ऐसी प्रकिया है जहां एक ओर देशो –देशों की दूरिया कम करती हैं तो दूसरी ओर यह विकसित राष्ट्रों के बाजारवाद को बढावा देती हैं।आज भी यह प्रकिया कइयों के समझ के परे हैं। सामान्यतः देखे तो कल के बाजार में चीनी 30 रू किलो दाम मे हमने खरिदी किंतु आज वही चीनी 35 रू किलो दाम पर खरिदनी पडती हैं। या ज्वलनशील पदार्थों के मूल्यों में रोजाना उतार–चढाव देखने को मिलता है। यह बात आम आदमी के समझ के बाहर हैं। किंतु उपरोक्त होनेवाला यह बदलाव भूमंडलीकरण की नीति का प्रत्यक्ष परिणाम हैं।भूमंडलीकरण की प्रकिया मे लघु से लघुत्तम और बृहत से बृहत्तम देश,राज्य,समाज,व्यक्ति,चीजें,विचार सब कुछ समाहित हो चुके हैं।भूमंडलीकरण से क्या भाषा,साहित्य, संस्कृति, क्या स्त्री, क्या पुरूष, क्या जन,जल,जंगल,जमीन सभी प्रभावित हो चुके हैं।

भूमंडलीकरण की इस नई सभ्यता का प्रभाव साहित्य,संस्कृति और भाषा पर सर्वाधिक मात्रा में हुआ हैं। विदेशी भाषाएं देशी और प्रादेशिक भाषाओं पर हावी होती जा रही हैं। सांस्कृतिक स्तर पर मूल्यों का पतन गति के साथ हो रहा हैं। साहित्य में भूमंडलीकरण या बाजारवाद ने दस्तक दी हैं। समझ से परे है कि हिंदी कविता मे बाजार और बाजार में कविता एक दूसरे में कब घुलमिल गई हैं।

दुनिया एक बाजार हैं। इन्सान न तो मनुष्य रहा न आदमी बल्कि बाजारवाद के दौर में केवल और केवल ग्राहक या कस्टमर बनकर रह गया हैं। कबीरदास ने भी बाजार के बारे में 'कबीरा खडा बजा में' कहा था तब बाजार का मतलब खुली जगह,इकट्टा हुए लोग था कवि केदारनाथ सिंह जब बाजार की बात करते हैं तो वहा न खुली जगह दिखाई पडती हैं और न लोग ।यह आज के भूमंडलीकरण के दौर का नया बाजार है यह।केदारनाथ सिंह लिखते हैं–

"बाजार में न धूल थी
न जनता
दोनों को साफ कर दिया गया था।"

समय दौड रहा हैं और बाजार दौगुनी रफ्तार से दौड रहा हैं। बाजार में आदमी नहीं चीजें महत्वपूर्ण हो गई हैं। विशेषत: उन चीजो का मुल्य उंचे स्तर पर हैं जा विलायत की हैं,ब्रॉड या कंपनियों की हैं। सामान्य चीजो का बाजार मे कोई गौरव का स्थाण नहीं हैं । पेड पर लगें अमरूद बाजार में पहुंचतें है तो अमरूदों की जगह फुटपाथ पर ही हैं, गौरवान्वित बाजार में नही। कवि केदारनाथ इस स्थिति को बखुबी व्यक्त करें हैं–

"अमरूद किर आ गए हैं बाजार में
और यद्यापि वहा जगह नहीं थी
पर मैने देखा छोटे–छोटे अमरूदों ने
सबकोढेल–ढालकर
फुटपाथ पर बना ही ली
टपने लिए थोडी जगह।"

हा यह बात अलग है कि बाजार मे जगह न होते हुए भी फुटपाथ पर ही वे एक छोटी सी टाकरी में शंहेशाह की भॉति जमे हुए हैं। तात्पर्य देशी व्यापार,चीजें नये बाजारों से लापत्ता होती दीख रही हैं। यही दशा हमारे सामान्य आदमी की भी बन चुकी हैं। महगें बाजारो में आम आदमी फुटपाथ की स्थिति पर आ पहुंचा हैं।

कवि कुमार अंबुज ने वैश्विकीकरण की नई सभ्यता को पूरानी सभ्यताओं,परम्पराओं को रौंदकर आने की बात बात पर मुहर लगाते है। 'नई सभ्यता की मुसीबत' कविता में लिखते हैं–

"नई सभ्यता ज्यादा गोपनीयता नहीं बरत पाती हैं

वह आसानी से दिखा देती हैं अपनी जंघाए और जबडे
वह रौंदकर आई है कई सभ्यताओं को
लेकिन उसका मुकाबला बहुत पुरानी चीजों से है
जिन पर अभी तक लोग विश्वास करते चले आए हैं।"

भूमंडलीकरण या बाजारवाद ने हमारी परम्परागत चीजों ,सभ्यताओं को बेदखल करने का काम किया हैं। हमारे पूर्वज जो कि जीवित रहने के लिए उन्हे अधिक विधियाँ ज्ञात थी, जबकि हमारी स्थिति यह है कि हमें मरते चले जाने की ज्यादा जानकारियाँ हैं।बाजारवाद में हमे चाजों ने घेर लिया हैं। और चीजों की दूर्लभता के कारण हम पूरी तरह से वैश्विक बाजार पर अवलंबित हो चुके हैं। कुमार अंबुज लिखते हैं–

"जितनी चीजों से तुमने घेर लिया है हमें
उनमें से कोई जरा सा भी ज्यादा जीवन नहीं देती
सिवाय कुछ नई दवाइयों के
जो यों भी रोज–रोज दूर्लभ होती चली जाती हैं।
और एक विशाल दुनिया को अधिक लाचार बनाती हैं।"

विश्व बाजार के कारण सामान्य आदमी अब लाचारी और मजबुरी के दौर से गुजर रहा हैं। परावलंबी होता जा रहा हैं।

वैश्विक बाजार का प्रभाव सामान्य किसान जन पर अत्यधिक मात्रा में हुआ हैं। आज महाराष्ट्र ही नहीं पूरे भारत वर्ष में आत्महत्या करनेवालों की तादात में किसान सर्वाधिक हैं। यह चिंता से अधिक चिंतन का विषय हैं।गांव का किसान गांव में ही बपनी रोजी–रोटी कमा लिया करता था। उसे जरूरत नहीं थी किसी शहर , कारखानों , साहुकारों की । किंतु भूमंडलीकरण या बाजारवाद की नई सभ्यता में किसान बेदखल होता जा रहा हैं। युवा कवयित्री किरण अग्रवाल 'बेदखल' कविता में किसान की पीडादायक स्थिति को व्यक्त करती हैं–

"मैं एक किसान हूँ
और अपनी रोजी नहीं कमा सकता इस गांव में
मेरी हंसुआ,मेरी खुरपी
मेरी कुदाल और मेरी जरूरत नहीं रही
मैं जानता हूँ
उन्नत तकनीक द्वारा बेदखल किए जाने के बाद
चौडे डील और ऊंची सींगवाले हमारे बैल
सबसे पहले कसाइयों द्वारा खरीदे गए
कोई कसाई
कोई कसाई कर रहा है मेरी बेदखली का इंतजार।"

क्या यह बेदखली समझा से परे है ? नहीं। वैश्विकीकरण के दौर में नई तकनीक के द्वारा बनायी गई चीजों की बदौलत परम्परागत औजार बेकार साबित हाने लगे हैं। परम्परागत तौर तरिके से जीवनयापन करनेवाला किसान ,उसके बैल बेदखल होते दिखई पडते हैं । वर्तमान स्थिति में एक ओर किसान खुदकुशी करते हुआ दिखाई पडते हैं तो दूसरी ओर उसके बैल कसाइयों के द्वारा कत्तलखनों के लिए खरिदे जा रहे हैं। बाजारों को चलानेवाले कसाई की जिंदगी खुब मजे में हैं।

भूमंडलीकरण या बाजारवाद ने हमारा सरल, साधा और सादगी पुर्ण जीवन हमसे छीन लिया हैं। गांव,मोहल्ला,बस्ती,दादा–दादी,मॉ का आंचल,बरगद की डांव ,रेत के टिले अब बीते कल की बात हो चली हैं। गंदे शहरों की फुटपाथ पर कीचड पट्टी में जीवन जीने के लिए लाचार हैं–

"मैं नहीं जानता कि मुझे कहा जाना हैं
किस दिशा में
मैं जानता हूँ कि बरगद की छांव के मेरे दिन गए
नदी की धार के मेरे दिन गए
मॉ की आंचल की छांव और दुलार के दिन मेरे गए
सरसों के फूल
और तारों से भरा आसमान
मेरा नहीं रहां....
....और मेरा गाव ?
मेरा गांव बसेगा
मेरा गांव बसेगा दिल्ली और मुंबई जैसे महानगरो

की कीचड-पट्टी में।''

गांव का सादगी पूर्ण जीवन अब खतरे में आ चुका हैं। भूमंडलीकरण के दौर में हमारे बाजार ,छोटी मंडियों,सामान्य विकेता,कारीगर हाशिए पर आ चुके हैं। जमाना ब्रॉड का हैं । देशी कारीगरों के पास न तो ब्रॉड हैं और न मुकम्मल बाजार। फुटपाथ पर रजाई, मीट्टी के घडे, आमरूद,सब्जी इत्यादी बेचनेवाला कहा जानता हैं। भूमंडलीकरण के दौर में केवल लेबल का माल ही बिकाऊ हैं।कवि राजेंद्र राजन 'बाजार में कबीर' कविता में इस भयावह स्थिति को सटिक रूप में व्यक्त किया हैं–

''मुझे लेनी थी एक चादर/सो,मैं गया कबीरदास के घर
वहां पता चला/वो तो बाजार के लिए निकल चुके हैं
उन्हे मैं खोजता तो कहां खोजता / एक पेड के नीचे जहां
कबीरदास का ठिकाना था/वहां न पेड था , न थे कबीरदास
विशाल चमचमाती दुकानें थी वहां/लुभावनी चीजों का लुभावना दृश्य था।''

कबीर जैसाा चादर बुनकर अपना गठ्ठर लेकर बाजार में बेचने पहुंचे हैं पर वे जिस जगह बैठा करते थे वहां न तो पेड हैं न कबीरदास ,वहा तो केवल चमचमाती दुकानें थी।जहां दुनिया के हर कंपनी का ब्रॉड और महंगी से महंगी चाजें उपलब्ध हैं। जो आम आदमी के बस की बात नहीं हैं । सच तो यह हैं कि जिनके पास पैसा हैं व चीजें देखते हैं मॅलय नहीं। पैसे से बाजार था सा बाजार में पैसा था जैसी कशमकश की स्थिति आज के बाजारों में है।राजेंद्र राजन लिखते हैं–

''कहना मुश्किल था कि
खरिदनेवालों की जरूरते ज्यादा थी
या बाजार ज्यादा था।''

बाजार की स्थिति यही तक ही सीमित नहीं हैं बल्कि वह निरंतर फैल रहा हैं बिल्कुल ब्रह्मांड की तरह। कबीरदास की तलाश करते कवि जब आगे बढे और प्यास से बेहाल हाकर पानी की तलाश करने लगे–

''मुझे जरूरत थी थोडे पानी की
पानी कहां मिलेगा पुछने पर/ बताया गया थोडा आगे
एक दुकान हैं जहां मिलेगा/ किसी कंपनी का पानी
पानी की दुकान/ मैं हैरान/कबीरदास होते साथ तो शायद
कहते,देखें ,कही हवा की दुकान भी होगी
धर्म की दुकान तो होगी ही/पैसा हो तो ख्रीदा जा सकता हैं
सत्य भी पुछो–दया,प्रेम,करूणा की दुकान भी होगी
और मै कबीरदास की ऑखों मे झाकंता कि
उनमे कितनी पीडा हैं,कितनी हंसी।''

बाजारवाद के दौर में चारो ओर दुकाने सजी हुई हैं पानी भी अब बॉतलों में बंद हैं। कवि हैरतअंगेज हैं कि अब पानी भी ख्रीद कर पीना पडेगा यही सचाई है वर्तमान समय की । कवि को लगता हैं कि कही धर्म, सत्य,प्रेम,दया करूण आदि की भी दुकाने होगी पैसे होंगे तो खरीदा जा सकता हैं। यह स्थिति जितनी हास्यास्पद लगती हैं उससे ज्यादा पीडादायक हैं ।बाजार इतने फैल रहे हैं कि कबीरदास की खोज में निकले कवि भी अपने घर का रास्ता भूल चुके हैं–

''कि मेरे गांव की तरफ कौनसा रास्ता जाता हैं
और बाजार हर तरफ इतनी दूर तक फैला हुआ था।''

दुनिया एक बाजार बन चुकी हैं । घर अब घर न रहकर बाजार हो चुके हैं। इस कौने में फ्रीज, उस ओर टि.व्ही, उपर ए.सी चारो ओर चीजें ही चाजें हैं। सुर्य डुबने की स्थिति में कवि महोदय को कबीरदास जी दिख पडे–

''विदा होते सुर्य की रोशनी में/उसे दिखे अचानक कबीरदास /उन्हे दो आदमियों ने
पकड रक्षा था/और डपटकर पूछ रहे थे/कि उनका माल किस कंपनी का हैं....
किसी कंपनी का होना चाहिए/अगर नहीं हैं तो भरना होगा जुर्माना
परेशान खडे थे कबीरदास खाली हाथ/एक भी चादर नहीं बिकी थी,
उलटे फस गये थे/जुर्माने की गिरफ्त में...''

कबीरदास जी की जो हालात हुई हैं उससे अलग हमारे देशी कारगिरों की नहीं हैं। ब्रॉड, कंपनी के नाम पर बनावटी चीजें लेने के लिए आज का खरीददार विवश हैं।

सुचना प्रौद्योगिकी के विस्फोट के दौर में आकाशवाणी, दूरदर्शन,सिनेमा, कम्प्युटर, मोबाईल आदि का अमर्याद इस्तेमाल की वजह से मानवीय रिस्ते खतरे में आ चुकें है।लोग आजकल घर, मोहल्ले, गाांव,शहर में कम इंटरनेट पर ज्यादा मिलते हैं। कवयित्री किरण अग्रवाल लिखती हैं–

"नेट पर एक पूरी दुनिया है / हर क्षण रूप बदलती हुई
गति और रोमांच से भरपूर / नेट पर एक पूरी दुनिया है
और इस दुनिया के एक हिस्से में / बंद है मेरा प्रोफाइल
इस प्रोफाइल में दर्ज है मेरा नाम / मेरी पसंद–नापसंद,यात्राएँ,उपलब्धियाँ
मेरे अनुभव,मेरी जरूरतें , मेरा कॉन्टैक्ट नंबर और इ–मेल आयडी
सबकुछ मौजूद है वहां मेरे बारे में
लेकिन मैं कहां हूँ वहां सोचती हूँ मैं।"

कहा तो जाता है कि इंटरनेट की दुनिया ने देश–विदेश,व्यक्ति–व्यक्ति के बीच की दूरियाँ दूर की हैं,किंतु यह भी सच है कि आपसी नाते–रिस्तों में अब औपचारिकता का स्तर आ पहुँचा है ,इस बात को कोई नकार नहीं सकता।व्यक्ति अपने को तलाश रहा है प्रोफाइल तो है किंतु स्वयं गायब है। यही उपनिवेशवाद की त्रासदी है।

संदर्भ ग्रंथ / पत्रिका

- आलोचना अंक–2012
- वागर्थ अक–2014,2015